International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(2): 78-80

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(2): 78-80
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-01-2019
Accepted: 14-02-2019

सुमन मिश्रा
प्रोफेसर, संहिता संस्कृत सिद्वान्त विभाग, उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय, ऋषिकुल परिसर हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत

Correspondence
सुमन मिश्रा
प्रोफेसर, संहिता संस्कृत सिद्वान्त विभाग, उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय, ऋषिकुल परिसर हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत

पर्यावरण संरक्षण में आयुर्वेद की भूमिका

सुमन मिश्रा

सारांश
सर्वप्रथम आयुर्वेद क्या है? यह जानना अति आवश्यक है। जो शास्त्र आयु का ज्ञान कराता है उसे आयुर्वेद कहते है यह अथर्ववेद का उपवेद है। इसी कारण अथर्ववेद के कई उद्वरण इसमें डाले गये है। आयुर्वेद के दो प्रयोजन हैं सर्वप्रथम स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना। दूसरा आतुर की रक्षा करना ।
आयुर्वेद के प्रथम प्रयोजन में आचार्यों ने सदवृत, स्वस्थवृत सम्यक ऋतुचर्या का वर्णन किया है। व्यक्ति को स्वस्थ रखने के लिए पर्यावरण का शुद्व रहने पर ही इन उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकती है। अथर्ववेद जिसका कि आयुर्वेद उपवेद है उस अथर्ववेद में पर्यावरण संघटक तत्वों में तीन प्रमुख हैं– जल वायु व वनस्पति। ये ही पर्यावरण का निर्माण करते हैं।

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे, पुरूरूपं दर्शतं विश्वचक्षणाम। [1]
आपो वाता ओषधयः तान्येकस्मिन भुवन अर्पितानि।।(अथर्व 18/1/17)

पर्यावरण को हम दो भागों में बांट सकते हैं।
1. धारक पर्यावरण
2. पोषक पर्यावरण

धारक पर्यावरण के अन्तर्गत सोम (जल) सूर्य और वायु आते है जो हमारे शरीर के वात पित्त और कफ को संचालित करते हुये देह को धारण करते है।

विसर्गादान विक्षेपैः सोमसूर्यानिलस्तथा। [2]
धारयन्ति जगददेह कफपितानिलस्तथा।।(सु0सू021/8)

पोषक पर्यावरण के अन्तर्गत आता है पादप वनस्पति जगत क्योंकि पादप जगज ही सोम(जल) सूर्य व वायु से स्वतंत्र ऊर्जा प्राप्त कर उसे ग्रहण योग्य स्थिर ऊर्जा में परिवर्तित करते है। जिसे ग्रहण करने से हमारे शरीर का पूर्ण पोषक संभव होता है। इन धारक और पोषक पर्यावरण के संतुलन से हम स्वस्थ रहते हैं। परन्तु आज दौड़ धूप के कारण हम वायु जल देश और काल जैसे पर्यावरण के घटकों को प्रदूषित करते जा रहें है। आचाग्र चरक के अनुसार इन चार के विकृत होने पर एक ही समय पर एक ही समान लक्षण वाले रोग उत्पन्न होकर समाज को नष्ट कर देते हैं।

कूट शब्दः पर्यावरण आयुर्वेद जनपदोद्ध्वंस।

प्रस्तावना
आयुर्वेद के ग्रन्थों में जैसे स्वस्थवृत्त के संदर्भ में पर्यावरण से संबन्धित तथ्य सामने आये है। जैसे वायु जीवन का आधार है। वायु में ही अमृत रूप प्राण तत्व आक्सीजन विद्यमान है। वायु और सूर्य ही जगत के रक्षक है। वायु वर्षा और अग्नि ही प्रदूषकों का नाश करते हैं। इसी संदर्भ मे अथर्ववेद में कहा गया है –

1 युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथः। [3] (अथर्व 4/25/3)
2 वात पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन्। [4] (अथर्व 3/21/10)

वायु इनमें अति महत्वपूर्ण है क्योंकि वायु के बिना जीवन संभव नहीं हैं शरीर संपूर्ण जीवनदायी प्रक्रियाओं में वायु की उपस्थिति अनिवार्य है। वायु से ही आहार का चयापचय होकर जीवन शक्ति प्राप्त होती है और जीवन चलता रहता है। जब जीवित शरीर को शुद्व वायु प्राप्त होती है तब श्वांस प्रश्वांस द्वारा रक्त का शुद्विकरण शक्ति, उत्पादन, शरीर ताप परीक्षण आहार का उपभोग संभव होता है।

आन्तरिक धारक धातु रूप त्रिदोषों में शरीरवात् का महत्व है उसी प्रकार जीवन के पोषक त्रिस्थूण आहार जल वायु में पर्यावरणीय वायु का महत्व है।

चरक संहिता में कहा गया है।

वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः वायु तंत्र शरीर रूपी यन्त्र को धारण करने वाला, शरीर की छोटी–बडी (सब प्रकार की) चेष्टाओं का प्रवर्तक, (अनमहीर विषयों की ओर जाने वाले)मन का नियन्त्रक और (अभीष्ट विषयों की ओर जाने वाले) मन का नियन्त्रक और (अभीष्ट विषयों की ओर जाने वाले मन का) प्रेरक,सब इन्द्रियों का भी प्रेरक, सब इन्द्रियार्थो का मन की ओर ले जाने वाला और वायु की निरन्तरता का साक्षी होता है । ये सभी कर्म अप्रकुपित वायु से सम्पन्न होते है। इसके विपरीत प्रकुपित वायु शरीर में अनेकानेक रोग को उत्पन्न करता है । प्राणों को नष्ट करता है।

वाह्वा वायु के गुण

पूर्वी वायुः स्निग्ध,लवण,गुरू,रक्तपित्त कारक तथा क्षत व्रण तथा कफ रोग को बढ़ाने वाली एंव कफ शोषी व्यक्ति के लिये हितकर परन्तु क्लेश कृत होती है।

दक्षिणी वायुः मधुर, कषायानुरस, लद्यु श्रेष्ठ एंव रक्तपित्त शामक तथा वात वर्धक नहीं है।

पश्चिमी वायुः रूक्ष, खर, तीक्ष्ण, कफ– भेद विशोषक तथा शरीर शोषक है।

उत्तरी वायुः उत्तरी वायु स्निग्ध, मृदु, मधुर, कषायानुरस शीत, दोषों का अप्रकोपक व्यक्तियों में बल को बढ़ाने वाली है। यह विषार्त पुरूषों के लिये उत्तम है।

वायु प्रदुषणः सभी हरे वृक्ष और लताएं प्राण वायु देकर पर्यावरण को शुद्व करते है जैसे वृक्ष कार्बनडाईआक्साइड नामक तत्व वायु से ग्रहण करते है और आक्सीजन नामक तत्व छोड़ते है। इस प्रकार हमारा पर्यावरण स्वस्थ रहता है। वायु मण्डल में विविध–प्रकार की वायु विशेष अनुपात पूर्वक होती है। वे प्राणियों को जीवन शक्ति देती है। यदि औद्योगिक कारणों से अथवा अन्य साधन द्वारा वे प्रकृति के अनुपात को प्रदुषित करती है तब वायु प्रदुषण होता है। वायु प्रदुषण मनुष्य के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। आचार्य सुश्रुत ने भी विकृत वायु के लक्षण लिखे है। धुआ अथवा वायु के विषाक्त होने पर पक्षी श्रम से थककर भूमि पर गिर जाते है और वास, श्वास, प्रतिशाप शिरोरोग तथा नेत्र रोग से ग्रसित हो जाते है। [5]"

कार्बन –मोनो–आक्साइड –गैस मानव की चिन्ता शक्ति को कम कर देती है । दूसरे गैसों से कैसर जैसे जटिल रोग भी हो जाते है इसके अलावा वायु प्रदुषण से ओजोन–स्तर दूषित हो जाने से वृक्ष वनस्पतियों का क्षय हो जाता हे। वनस्पतियों का क्षय मानव जीवन में संकट उपस्थित कर देता है। मानव स्वंय ही पर्यावरण को दूषित कर रहे है जैसे –पैट्रोल निर्मित वाहनों का चलाना धूम्रपान करने से स्वस्थ्य वायुमण्डल को भी प्रदूषित करते है। वनों को काटकर मानव अपने घरों का निर्माण करते है। अतः वृक्षों के अभाव में हमारा वातावरण दूषित हो रहा है।

वायु जन्य व्याधियॉः वायु जीवन में अत्यन्त महत्व पूर्ण होने से अशुद्व वायु के सेवन से शरीर में सामान्य अस्वास्थ्यकर स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मनुष्य प्रायः शिरः शूल, आलस्य, अरोचक पाण्डु, कास, यक्ष्मा, प्रतिश्याय, अग्निमाद्य, दौर्बल्य से पीड़ित रहता है। अशुद्व वायु से प्रायःश्वसन संस्थान की व्याधिया होती है। जैसे– श्वास, कास यक्ष्मा। इसके आंतरिक वायु के माध्यम से संचारित जीवाणुओं से होने वाले रोग दूषित वातज माने जाने चाहिये । वायु प्रसरित एपिडेमिक्स में राजयक्ष्मा कुष्ठ, मसूरिका, चेचक, डिप्थीरिया आदि प्रमुख है। धूल कणों से होने वाले रोग silicosis, Siderosis, ntrascosis and Pollen से होने वाले एलर्जी सम्बन्धी रोग भी प्रमुख है। वायु शुद्वि उपाय –

1. वृक्षों को काटने पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिये।
2. सभी लोग जहॉ भी रिक्त स्थान देखे वहॉ वृक्षारोपण करें।
3. महानगरों में मार्गो के मध्य मे हरे वृक्षों एंव लताओं का विकास करे।
4. हरे वृक्ष एंव लताये पुष्प, फल और औषधियों को देते है।
5. सभी मंत्रालय नगर से बाहर स्थापित होने चाहिए।
6. परमाणु विस्फोट पर प्रतिबन्ध होना चाहिए।
7. कर्पूर, गुग्गुल, राजिका आदि हवन द्रव्यों को अग्नि मे डालकर हवन करने से वायु शुद्व होती है।

जल संरक्षणम्ः जल जीवन का अमृततुल्य औषधि और रोगनाशक है जल सब रोगों को नाश करने वाला और रसायन है। जल मानव जीवन का प्रमुख साधन है अथर्ववेद में कहा गया है जिसके अन्तर्गत आयुर्वेद आता है– [6]

आपोह्रदद्योत भेषजम्।(अथर्व 6/24/1)
आपो विश्वस्य भेषजी।(अथर्व 3/7/5)

चरक संहिता सूत्र स्थान के 27 वें अध्याय में जल के प्रकारों का उल्लेख करते हुये बताया गया है कि जल एक ही प्रकार का होते हुऐ भी विविध प्रकार का हो जाता है यह परिवर्तन देश काल आदि के कारण होता है। आकाश से एक ही प्रकार का ऐन्द्र जल गिरता है वह गिरता हुआ जल तथा पृथ्वी पर गिरा हुआ जल देशकाल की अपेक्षा करने वाला होता है और सूर्य तथा चन्द्र की रश्मियों के सम्पर्क से शीत उष्ण,स्निग्ध और रूक्ष आदि समीपस्थ व भूमि के गुणों से युक्त हो जाता है। चरक सूत्र 27/198

जल प्रदूषणः जल शाक्ति वर्धक रसायन है पृथ्वी का 80 प्रतिशत भाग जल से आवृत है मानव अपने लाभ के लिए औद्योगिक यंत्रालयों द्वारा जल को प्रदूषित कर देते हैं तथा कृषि कार्यो में प्रयुक्त कीटनाशक पदार्थों को तथा रसायनिक खाद्य पदार्थों को जल में प्रभावित कर देते है जिससे जल दूषित हो जाता है आचार्य चरक ने कहा है जो जल अत्यन्त विकृत, गन्ध वर्ण, रूक्ष स्पर्श काला हो एवं क्लेदयुक्त हो जिसे जलचर पशु या पक्षी छोड़कर चले गये हो जो सूख कर अल्प मात्रा में रह गया हो,जो पीने में स्वादयुक्त न हो उसे दूषित अर्थात नष्ट गुणों वाला जल समझना चाहिए।च0वि0 3/2 [9]

आचार्य सुश्रुत ने भी अशुद्व जल के लक्षण बताते हुऐ लिखा है दूषित जल विच्छिल,उग्रगन्धयुक्त,फेनयुक्त एवं रेखाओं से पूर्ण होता है इसमें रहने वाले जीव मेढक मछली मर जाते है। इस जल में जो भी स्नान करते हैं उनकों वमन,मोह,ज्वर,दाद,तथा शोफ हो जाता है।सु0क0 3/7/8 [10]

अशुद्व जल जन्य रोगः काठिन्य युक्त जल से पाण्डु रोग अजीर्ण तथा अतिसार एवं अन्य उदर विकार हो जाते हैं।

जल के विकार से होने वाले जीवाणु जन्य रोग आन्त्र ज्वर, डिसेण्ट्री, विसूचिका आदि रोग हो जाते हैं।

परोपजीवी कृमि रोगः गण्डूपद कृमि, अंकुश कृमि, अमीबिक डिसेण्ट्री, तथा पानी में पड़ने वाले मच्छरों से मलेरिया डेंगु आदि रोग हो जाते हैं। ऐसे में जल शुद्व करना अति आवश्यक है जल का शोधन दो प्रकार से होता है–

1 मार्जन। 2 प्रसादन।

1 मार्जनः लोष्ट्र से निर्वापण द्वारा शुद्व करने की विधि को मार्जन कहा जाता है। उबालकर या तिर्यक पावन यन्त्र द्वारा पातित जल भी शुद्व होता है।

2 प्रसादनः सुश्रुत ने कलुषित जल के शोधनार्थ सात वस्तुओं को प्रसादन कहा है– कतक, गोमेद, विसग्रन्थि, शैवाल मूल, वस्त्र, मुक्ता, मणि घनवस्त्रपरिस्रावैः क्षुद्रजनत्वभिरक्षणाम् (अ0सं0) [11]
अर्थात मोटे वस्त्र से छान लेने से भी सूक्ष्म जन्तु आदि भी अलग हो जाते है और जल की शुद्वता भी बढ जाती है। आचार्य सुश्रुत ने स्वर्णरजत ताम्र, कांस्य, तथा स्फटिक एवं मृतिका पात्र मे रखकर पुष्प से वासित करके सुगन्धित जल पीने को कहा हैं। नागकेशर, चम्पा, उत्पल, पाटला, आदि पुष्पो के सुगन्ध से जल की र्दुगन्ध दूर हो जाती है जल पीने के लिये उत्तम हो जाता है। (सु0सू0 45 / 12.13) [12]
स्वस्थवृत में कहा गया है कि देश की प्रकृति के अनुसार ही मनुष्य को आहार करना चाहिए । उसके गुण के विपरीत आहार बिहार करने वाला व्यक्ति रोगी होता है भूमि ही प्राणियों के जीवन का साधन है। भूमि ही अन्न आदि से प्राणियों को पोषित करती है।
आचार्य चरक के मत से जिस देश के स्वभाविक वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श विकृत हो गये हो अधिक कलेद युक्त, सॉप, हिसंक जन्तु, मच्छर, टिड्डी, मक्खियॉ, चूहे, उल्लू, गीध, सियार, आदि जन्तुओं से व्याप्त,तृण और फूस से युक्त जैसा पहले कभी नही हुआ हो ऐसे गिरे हुए, सूखे हुए और नष्ट शस्य वाले धूम युक्त वायु वाले, लगातार शब्द करते हुए पक्षियों के समूह और जहॉ जोर से कुत्ते चिल्लाते हो, अनेक प्रकार के मृग पंक्षी घबरा कर दुखित होकर इधर उधर दौडतें है। ऐसे जनपद जहॉ धर्म, सत्य, लज्जा, आचार, स्वभाव और गुण नष्ट हो गये हो, जहॉ के जलाशय क्षुब्ध हो और उसमें बड़ी लहरे उठती हो, जहॉ लगातार आकाश से उल्कापात होता हो, बिजली गिरती हो, भूकम्प होता हो और भयंकर शब्द सुनाई पड़ते हो बार बार निरन्तर घबराये हुए मृग और कृन्दन का शब्द जहॉ अधिक सुनाई पड़ता हो वह देश दूषित है, ऐसा समझना चाहिये (च0वि0 3/3)[13]

भूमि शुद्वि – संमार्जनोपाञ्जन्नेन सेकेनोल्लेखनेन च ।
गवां च परिवासेन भूमिः शुद्वयति पञ्चभिः।।

अर्थात–झाडू लगाना, गोबर से पोतना जल से सिंचन करना, खोदना, गायों को बॉधना, इन पॉच साधनों से भूमि शुद्व होती है।
हमारे आचार्यो के द्वारा कहा गया है कि गोमय मे जीवाणु नाशक गुण होता है इससे भूमि शुद्व होती है।

विकृत कालः ऋतुसे स्वाभाविक लक्षणों से विपरीत लक्षणों वाले और कम लक्षणों वाले काल को अहितकर (अस्वास्थ्य कर) जानना चाहिये। (च0 वि0 3/4) [14]
काल के लक्षणों का अतियोग, अयोग, मिथ्यायोग होने से काल अस्वास्थ्यकर होता है।काल शब्द से हेमन्त, ग्रीष्म वर्षा आदि ऋतुओं का ज्ञान किया जाता है। हेमन्त ऋतु में अधिक सर्दी, ग्रीष्म ऋतु में अधिक गरमी एवं वर्षा ऋतु में अधिक वर्षा क्रमशः हेमन्त ग्रीष्म एवं वर्षा काल का अतियोग कहा जाता है। हेमन्त ऋतु में भी सर्दी अधिक पडे,कभी कम पडे,कभी बिल्कुल न पडे और कभी सर्दी पड़ने लगे एंव वर्षा ऋतु में कभी वर्षा अधिक हो कभी कम हो,कभी बिल्कुल न हो,कभी सर्दी या गर्मी पड़ने लगे तो इसे कम से हेमन्त,ग्रीष्म एंव वर्षा ऋतु का मिथ्या योग कहा जाता है।

उपसंहारः अतः हमारे आचार्यो को वायु, जल देश व काल की विकृति एंव उपायों का ज्ञान था।
उपरोक्त दोषों से युक्त चारों पर्यावरणीय भावों को जनपदोदध्वसक मानना चाहिये। जनपदोदध्वसकाल में प्रभावित जनपद में जनपदोदध्वस के पूर्व एकत्रित गुणयुक्त औषधियों की सहायता से जनपदोदध्वस गुणयुक्त व्यक्तियों की रक्षा की जा सकती है। वायु जल देश, काल विगुणित रहते हुए भी गुणयुक्त औषधियॉ हितकारी होती है। ऐसी शास्त्रीय मान्यता है। प्राचीन भारतीय मनीषियों को पर्यावरण की शुद्वता एंव अशुद्वता का पूर्ण ज्ञान था, जिसके घटक दृव्य वे वायु, जल देश काल को मानते थे। पर्यावरण के घटकों के प्रति जागरूकता उत्पन्न कर पर्यावरण संरक्षण को ही आयुर्वेद के प्रथम उद्देश्य को प्राप्त करने की पहली नीव थी उसका पर्यावरण (प्रकृति) से सम्बन्ध हटता जा रहा है इसलिये उसमें बीमारिया पनपती जा रही है। मानव को आयुर्वेद के पर्यावरण (प्रकृति) को समझना है उसमें अपनी आस्था बढ़ानी होगी तभी बीमारियों से पीछा छूट सकता है, यही आज की दौड़ भरी जिन्दगी के लिये आवश्यक भी है।

संदर्भ

1. अथर्व–18/1/17
2. सु0सू0 21/8
3. अथर्व 4/25/3
4. अथर्व 3/21/10
5. सु0क0 3/16
6. अथर्व 6/24/1
7. अथर्व 3/7/5
8. च0 सू0 27/198
9. च0वि0 3/2
10. सु0क0 3/7.8
11. (अ0 सं0)
12. शु0 सू0 45/12.13
13. च0 वि0 3/3
14. च0 वि0 3/3